जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं में स्त्री चेतना

परमजीत कुमार पंडित
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सेंट पॉल्स कैथेड्रल मिशन कॉलेज, कोलकाता

शोध-सारांश :
समकालीन कविता में जितेंद्र श्रीवास्तव एक चर्चित नाम है। उनके द्वारा लिखी गई स्त्री से संबंधित कविताएँ बहुविध हैं। आज की स्त्रियाँ अपनी पहचान के लिए संघर्षरत हैं। अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को लेकर स्त्रियाँ चुप नहीं बैठती, इसके लिए विश्व पटल पर आन्दोलन जारी है। स्त्रियाँ बाजारवादी दृष्टि से ऊपर उठकर प्रेम की आशा रखती हैं। कवि की कविताएँ समाज का स्त्री के प्रति दृष्टिकोण बदलने की बात करती हैं। नजरिया बदलने से स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में अपना परचम लहरा पायेगी और लहरा रही हैं।

बीज-शब्द:
नारीत्व, उपभोक्तावादी संस्कृति, भूमंडलीकरण, उपभोगपरक, बाजारवाद, सामाजिक दृष्टिकोण

स्त्री-पुरुष का रिश्ता गाड़ी की दो पहियों की तरह है जो एक के बिना दूसरा खड़ा नहीं हो सकता है। समाज में दोनों का समान महत्त्व है और स्वस्थ सामाजिक वातावरण के लिए स्त्री-पुरुष का सहचर सम्बन्ध अत्यावश्यक है। आरम्भ से ही समाज में पुरुषों का वर्चस्व रहा है और स्त्रियों को अधिकारों से वंचित रखा गया है। वैदिक काल से नारी को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था और वह लक्ष्मी, देवी, साम्राज्ञी, महिषी, रत्न आदि नामों से अभिहित की जाती थी। अथर्ववेद में नारी के सम्मान को वर्णित करने वाला एक श्लोक द्रष्टव्य है-

"अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु सम्मनाः।
जाया परये मतुमतीं वाचं यददु शान्तिवाम्।।"[1]

वेदों में स्त्री यज्ञयी है अर्थात् यज्ञ समान पूजनीय। नारी की प्रतिभा तथा ज्ञान अपूर्व और अद्भुत था। वेदों में नारी को ज्ञान देने वाली, सुख-समृद्धि लाने वाली, विशेष तेज वाली, देवी, विदुषी, इंद्राणी, उषा जो सबको जगाती है, इत्यादि अनेक आदरसूचक नाम दिए गए हैं। समय और समाज परिवर्तनशील होता है। भारतीय सामाजिक परिस्थिति में नारी की स्थिति में जबरदस्त परिवर्तन होता रहा है। आदिकाल में कुछ साधकों ने नारी को मोक्ष का साधन माना। मध्यकाल में सामंतवादी शासन व्यवस्था और विदेशी आक्रान्ताओं के आगमन से नारी की स्थिति में जबरदस्त गिरावट आई। अशिक्षा और रूढ़ियाँ जकड़ती गई, घर की चारदीवारी में कैद नारी अबला, रमणी और भोग्या बनकर रह गई। अनेक समाज सेवियों ने स्त्री की उन्नति व शिक्षा के लिए अत्याचारी के विरुद्ध आवाज उठायी। उन्होंने तत्कालीन अंग्रेजी शासन के समक्ष स्त्री-पुरुष समानता का अधिकार, सती प्रथा का अंत, हिन्दू विधवा पुनर्विवाह आदि उल्लेखनीय प्रस्तावों को पास करवाया। निरंतर प्रयास से स्त्रियों की दशा में शनैः शनैः सुधार होता रहा, किन्तु समकालीन समय में स्त्रियों में जागरूकता का भरपूर प्रवाह होने लगा है। स्त्रियाँ अब ठगी नहीं जाती, वह बहुविवाह, दहेज प्रथा, महिला शिक्षा, शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न के खिलाफ मुखर हुई है। समकालीन समय में नारी आदर और सम्मान के साथ सहचरी बनना चाहती हैं। वह नारी ही है जो पुरुष के जीवन को नदी की भाँति समतल मैदान को उर्वर बनाती है। छायावाद के स्तम्भ कवि जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में स्त्री को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

समकालीन समय में स्त्री-विमर्श या स्त्री के प्रति दृष्टिकोण सहज-सरल और एकांगी नहीं रहा है। स्त्री-विमर्श की कई परतें हैं। उन परतों को खोलने का काम समकालीन कवि बखूबी कर रहा है। कवयित्रियाँ भी अपनी स्वच्छंद अनुभूतियों को पन्नों पर उकेर रही हैं। आज के कवियों में जितेन्द्र श्रीवास्तव का नाम काफी चर्चित है। श्रीवास्तव जी की 'अनभै कथा', 'असुंदर सुन्दर', 'बिलकुल तुम्हारी तरह', 'इन दिनों हालचाल', 'कायांतरण', 'कवि ने कहा', 'बेटियाँ', 'उजास', 'सूरज को अंगूठा', 'रक्त सा लाल एक फूल' अब तक प्रकाशित कविता संग्रह एवं संकलन है। वें अपनी कविताओं में स्त्रियों के कई पक्ष को सामने लाते हैं, जैसे- सामाजिक पक्ष, पारिवारिक पक्ष, आर्थिक पक्ष, सांस्कृतिक पक्ष और राजनैतिक पक्ष। पुरुषों ने सर्वदा ही स्त्रियों पर अत्याचार किया है। स्त्री के दुःख को कोई नहीं समझता है। पुरुष केवल रूप-सौंदर्य को पाकर खुश है पर सच्चाई यह है कि स्त्री की आँसू भी पुरुषों के हिस्से की होती है, जिसके बारे में वह तनिक भी नहीं सोचता और खुश होता है-

"पर स्त्रियाँ अनादि काल से पी रही हैं अपना खारापन
बदल रही है
आँखों के नमक के चहरे के नमक में
और पुरुष चमत्कृत है खुश है
कि वह रूप-लावण्य उसके लिए है।"[2]

पुरुष हमेशा ही खुश रहता है। स्त्री उसके लिए सुख का साधन है, सौन्दर्य का भेंट पाकर वह अभिभूत होता है, पर क्रोध का भड़ास स्त्री पर ही निकालता है-'जब पति को खिलाती हुई रोटियाँ / वे खाती हैं गालियाँ'। देवी समान स्त्री का अपमान करता है, मानो सदियों से उसके हिस्से प्रताड़ना ही हो। साहित्य की भाँति ही स्त्री भी समाज का दर्पण होती है। समाज की वास्तविक स्थिति का पता स्त्री की दशा से चल जाता है। मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' में चित्रित "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में दूध और आँखों में पानी।" से स्पष्ट हो जाता है। स्त्री जीवन है, सृष्टि है। पुरुष का अस्तित्व भी नारी के बिना संभव नहीं है। कवि के शब्दों में-

" वे रचती हैं!
वे रचती हैं तभी हम-आप होते हैं
तभी दुनिया होती है
रचने का साहस पुरुष में नहीं होता
वे होती हैं तभी पुरुष
पुरुष होते हैं।"[3]

पुरुष की दृष्टि से पुरुष स्वयं प्रतीक है। वह अपने को समाज में स्त्री से ऊँचा समझता है, परन्तु पुरुष को जन्म कौन देता है? पुरुष एवं स्त्री के साहचर्य से ही पुरुष का जन्म होता है। जब कोई माँ अपने प्रांगण में एक फूल को जन्म दे रही होती हैं तब धर्म के ठेकेदार हाथ धोकर धर्म के नाम पर उसके पीछे पड़ जाते हैं। कवि ने 'उम्र के फूल' शीर्षक कविता में इसे स्पष्ट किया है-

"जब एक माँ जन्म दे रही है
सृष्टि के सुन्दरतम फूल को
कुछ खाए अघाए लोग चिल्ला रहे हैं
धर्म धर्म धर्म धर्म
और अकबकाई हुई चकित जनता
आँखें फाड़े देख रही है उनको
अधर्म की ओर बढ़ते और दौड़ते हुए"[4]

धर्म का पाठ और आरंभिक संस्कार परिवार से प्राप्त करने वाले अधर्म का पथ कहाँ सीखते हैं, कौन सिखाता है? इसके पीछे कारण क्या है? कवि के लिए यह अधिक महत्त्वपूर्ण है। पुरुष स्त्री से विवाह करता है। साहचर्य की शपथ लेता है, किन्तु वह माथे पर दीप्त सिन्दूर की परवाह नहीं करता है। इसीलिए कवि अपनी माँ से सिन्दूर के विषय में जानने के लिए उत्सुक है। कवि की माँ उसे बताती है-

"सुहागन का चेहरा
विवाह के बाद
सिन्दूर न हो माँग में
तो राख हो जाती है आभा"[5]

स्त्री सिन्दूर को अपना गौरव समझती है। कलाइयों में चूड़ियाँ और माथे पर दिपदिपाता सिन्दूर सुहागन की निशानी है। बाबा नागार्जुन भी सन् 1943 ई. में रचित 'सिंदूर तिलकित भाल' कविता में पत्नी के प्रति पूर्ण समर्पण भाव व प्रेम दिखला चुके हैं। जितेन्द्र जी की सुभागी सरीखी बेटियों का ऐसा भाग्य कहाँ है कि उसके माथे के सिन्दूर को उसका पति याद रखे। माथे पर सिन्दूर न हो तो औरत की ज़िन्दगी शून्य हो जाती है, नारीत्व के लिए अभिशाप बन जाता है। इसलिए कवि मानते हैं कि 'सिन्दूर भय है स्त्री का!' 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी वर्मा कितनी सार्थक अभिव्यक्ति करती हैं- "यदि दुर्भाग्य से स्त्री के मस्तक का सिन्दूर धुल गया, तब तो उसके लिए संसार ही नष्ट हो गया। यह एक ऐसा अपराध है जिसके कारण उसे मृत्युदंड से भी भीषणतर दंड भोगते हुए तिल-तिल कर के जीवन के शेष, युग बन जाने वाले क्षण व्यतीत करने होते हैं।"[6] सुभागी के पति ने सहयोगी के रूप में उसका दामन थामा था, किन्तु बुरी प्रवृत्तियों और शराब की बुरे लत के कारण वह काल के गाल में समा गया। वह तीन-तीन बच्चों को लेकर दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर है, चारों तरफ अँधेरा छाया है। वह इस अँधेरे को कैसे पार कर पाएगी? इसकी चिंता कवि को भी है और सुभागी को भी-

"उनत्तीस की उमर में
तीन-तीन बच्चों की उँगलियाँ थामें
खड़ी हूँ चौराहे पर
न इस पार कोई
न उस पार
न ससुराल में कोई देखनहार है
न मैके में कोई पूछनहार

सब अपने दुःख तले दबे हैं
कौन सहलाए मेरा मन"[7]

हमारे समाज में विधवाओं की स्थिति भयंकर और विडम्बनापूर्ण है। ऐसी हजारों विधवाएँ समाज में फैली कुरीतियों का शिकार बनती है। उसे अशुभ माना जाता है, महत्त्व नहीं दिया जाता, बदनाम किया जाता है और जीवन के अन्धकार में भटकने के छोड़ दिया जाता है, हालाँकि विधवा होने में उसकी कोई भूमिका नहीं होती है। अंधश्रद्धा में डूबा यह देश कब अपनी मानसिकता बदलेगा? विधवाओं की दशा में सुधार कब होगा? विधवाओं का विलाप कौन सुनेगा? विधवाओं के विलाप में न जाने कितनी आवाजें गुम हो जाती है। स्त्रीवादी लेखिका गीताश्री लिखती हैं- "असुरक्षा, उपहास और एकाकीपन के संभावित भय ने उसके पाँव जकड़ लिए हैं। एक सिन्दूर ने उसका पूरा जीवन रंग दिया है। इस रंग को वह चाहकर भी नहीं धो सकती। उसका मानना है कि यह नियति का काम है, उसका नहीं।"[8] अर्थात् जब उसके समक्ष कोई सहारा नहीं होता, कोई पथ शेष नहीं होता, तब अपनी स्थिति को विधना की मर्जी मानती हैं और मनभर कोसती हैं-

" वे भाग्य की बात करती हुई
हँसती हैं विधाता पर
कभी कोसती हैं विधाता को
कहती हैं जो विधाता स्त्री होता
तो सोचो सखी, कैसा होता!"[9]

विचारणीय यह है कि विधाता की इच्छा मानकर वह परिस्थितियों से लड़ती है। कवि ने गाँव की सहज औरतों का भी चित्रण किया है। 'रामदुलारी' कवि की एक ऐसी ही पात्र है जो जाति-भेद को नहीं मानती और अपने पियक्कड़ पति के पिटाई का प्रतिरोध भी दृढ़ता से करती है। उसने अपने जीवन में निष्कलुष रहने का सलीका सीखा था। गाँव की अन्य औरतें उन्हें 'योद्धा' के रूप में जानती हैं-

"उसका सुख भोग रही हैं
गाँव की नई पीढ़ी की स्त्रियाँ
उनमें गहरी कृतज्ञता है रामदुलारी के लिए
वे उन्हें 'मर्द मारन' नहीं
'योद्धा' की तरह याद करती हैं"[10]

भूमंडलीकरण और बाजारवाद के इस दौर में स्त्री मात्र भोग्य की वस्तु समझी जाती है। उपभोक्तावादी संस्कृति में सभी वस्तुएँ उपभोगपरक मानी गई हैं। इस संस्कृति ने पुरुष की पाशविक वृत्ति व काम को तीव्र करने का कार्य किया है। आज स्त्री सब जगह है, फिर भी कहीं नहीं है। स्त्रियों का व्यापार जोर-शोर से किया जा रहा है। उसकी देह की बनावट के अनुसार पूँजीपति और सेठ चमड़ी का दाम लगाते हैं। पूँजीपतियों और सत्तासीनों के लिए वह तृष्णा (कामवासना) मिटाने का साधन भर है। स्त्रियों की आबरू लुटे जा रहे हैं, लेकिन प्रधानमंत्री बाहरी दबाव में दुखी हैं-

"बाजार का मायालोक रहेगा अपनी ही रौ में
महानगरों में दमकते माल
रच रहे होंगे मृगतृष्णा
उद्योगपतियों की महफिलें बना रही होंगी
नया रसायन सत्ता और पूँजी का
खरीद-फरोख्त और उसके बाहर भी
बलात्कार हो रहे होंगे स्त्रियों पर।"[11]

बलात्कार को घिनौने कुकर्म के रूप में जाना जाता है। पुरुष कामुकता का सम्बन्ध अनिवार्यतः रीतिकालीन सामंती मानसिकता वाले समाज में देह के जोर से है। मीडिया में आये दिन प्रकाशित होता है कि महानगरों के बंद कमरों में, चलती गाड़ियों में, अँधेरे में और गाँव में दिन-दहाड़े खेतों के मेड़ों पर बच्चियों और स्त्रियों को बलात्कार का शिकार बनाया जाता है। स्त्रियाँ उपभोगवादी समाज में अपने परिवार में ही सुरक्षित नहीं है। बलात्कार के दौरान बालिग और नाबालिग किस शारीरिक और मानसिक पीड़ा से गुजरती है, यह कौन समझता है। रोहिणी अग्रवाल इस सन्दर्भ में लिखती हैं- "बलात्कार और यौन शोषण एक ही वर्ग से संबंधित होते हुए भी परस्पर भिन्न है। बलात्कार स्त्री की मानवीयता पर आघात करने वाली पाशविक क्रिया के संपन्न हो जाने के बाद की स्थिति है जबकि यौन-शोषण ऐसे अनेक बलात्कारों की अनवरत प्रक्रिया भी हो सकता है और बलात्कार के इरादे से की गई प्रारंभिक छेड़छाड़ भी जहाँ स्पर्श, घर्षण, स्खलन जैसी चिपचिपी-गिजगिजी परिणतियों के न होते हुए भी स्त्री के 'मनुष्यत्व' को तार-तार कर देने की बर्बर आक्रामकताएँ हैं।"[12]

बलात्कार तो पुरुष के कामुक नज़रों से देखने से ही हो जाती है। 2020 में बलात्कार की औसतन 88 केस प्रतिदिन है। इसमें 7% की वार्षिक वृद्धि जारी है। बलात्कार की हर चौथी शिकार नाबालिग होती है। और न जाने कितने केस या घटनाएँ ऐसी हैं जिसकी शिकायत नहीं की जाती। स्त्रियों के शील-भंग होने पर समाज में उसके लिए कोई स्थान नहीं रह जाता और अधिकतर पीड़िता वेश्यावृत्ति की दलदल में उतर जाती हैं। वेश्यावृत्ति आज की देन नहीं, सभी राष्ट्रों में पहले से ही किसी-न-किसी रूप में मौजूद थी। बस फर्क सिर्फ इतना है तब यह कुछ सामंती और धनाढ्य लोगों के लिए हुआ करती थी और आज सामान्य पुरुषों के लिए भी सुलभ है।

प्रभा खेतान विशिष्ट लहजे में कहती हैं- "वेश्यावृत्ति एक नयी विकसित रणनीति है। आज यह केवल रोजी-रोटी से संबंधित नहीं बल्कि इसके आधार पर राष्ट्र अपना विकास कर रहे हैं।"[13] उपभोक्तावाद ने उसकी देह को कपड़ों और वर्जनाओं से मुक्त किया है, किन्तु साथ ही उसकी मानवीय अस्मिता को उभरने भी नहीं दिया है। वह आज भी वस्तु है, देह है। ऐसी देह जो भोगने का आमंत्रण देती है, बिकने के

लिए मूल्य स्वयं निर्धारित करती है। कवि 'शब्दार्थ' कविता में बाजार की दृष्टि को व्यक्त करता है-

"प्यार माने स्त्री
स्त्री माने देह
यही है दर्शन
यही है दृष्टि
बाज़ार की।"[14]

लेकिन कवि की स्त्री अपने को देह नहीं मानती बल्कि स्वप्न मानती है। वह लम्बी और निर्णायक लड़ाई लड़ना चाहती है क्योंकि उसने सूरज, चंद्रमा और पृथ्वी से क्रमशः उजाला, शीतलता और धैर्य प्राप्त किया है। वह देह के जादुई उत्सव में नहीं डूबना चाहती है-

"मैं अबला नहीं
एक स्त्री हूँ
मुझे नहीं डूबना
प्रायोजित देह के उत्सवों में!"[15]

वैश्विक गाँव की यह देन है कि स्त्रियाँ 'घर से कविता तक में मुक्ति के लिए तड़प रही' हैं। वह खेतों में काम कर रही हैं, कल-कारखानों में काम कर रही हैं, ऑफिसों में काम रही हैं। वह अपने पीठ पर मात्र बच्चों का बोझ ही नहीं वरन् पेट का वजन भी ढोती हैं। कवि की घास गढ़ती औरतें रगों में जमे हुए खून को टहकाने के लिए हर शाम आग सेंकती है। दुष्यंत कुमार की क्रांति-अग्नि को अपने हृदय में बचाए रखना चाहती है। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव स्पष्ट: लिखते हैं-

" घास गढ़ती औरतें
सोने से पहले सुबह के लिए
बोरसी की राख में छिपा कर
रख देती हैं थोड़ी सी आग"[16]

इसके साथ ही कवि ने 'परवीन बॉबी' के माध्यम से स्त्री के संघर्ष, मुक्ति की कामना को सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। उसने सारी वर्जनाओं को ठेंगा दिखा दिया था। वह न तो खुद की परवाह करती थी, न ही किसी और की। उसके विचार मुक्तकामी थे जिसे वह आत्मा के आईने से देखती थी। पुरुष सत्ता के वर्चस्व को नकार कर प्रचलित परम्पराओं और धारणाओं को तोड़ा। वह समाज में नैतिकता के कोतवालों से बिलकुल भी नहीं डरी। आज जो स्त्री अपने आपको स्वतंत्र मानती है उसके पीछे न जाने कितनी स्त्रियों का बलिदान है-

"तो इसलिए कि पहले कर चुकी हैं संघर्ष
परवीन बॉबी और जीनत अमन जैसी अभिनेत्रियाँ
स्त्रीत्व के मानचित्र के विस्तार के लिए"[17]

भूमंडलीकरण और ज्ञान-विज्ञान की नई-नई शाखाओं-प्रशाखाओं के विकास ने मानव के लिए कई चीजें आसान कर दी है। वह एक्स-रे के माध्यम से बीमारियों के संबंध में पता लगाता है तो वह अल्ट्रासोनोग्राफी के माध्यम से गर्भ में पल रहे बच्चे के लिंग का पता लगा लेता है। पुरुष मानसिकता का पता इस बात से लगता है कि भ्रूण हत्या अपराध तेजी से बढ़ रहे हैं।

यूनिसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में सुनियोजित लिंग-भेद के कारण भारत की जनसंख्या से लगभग 5 करोड़ लड़कियाँ एवं महिलाएँ गायब है। कवि श्रीवास्तव जी इस समस्या से खासे चिंतित नजर आते हैं। सजग कवि होने के नाते वे स्त्री की पीड़ा को व्यक्त करते हैं-

"मैं जानता हूँ यह अपराध है
पर क्या करूँ
कहाँ से लाऊँ
अपने भीतर एक स्त्री की आत्मा!
वह भी एक ऐसे समय में
जब बच्चियाँ मारी जा रही हैं कोख में ही"[18]

वंचितों की पक्षधर रमणिका गुप्ता यह मानती है कि- "स्त्री-मुक्ति मनुष्य को सही मायने में मनुष्य बनाने की समानता, भाईचारे और आजादी की ही मुहिम है, किसी को दास बनाने या स्वामी बनने की जंग नहीं। हाशिये की हर जमात अपने लिए नहीं बल्कि हर मनुष्य के मानवीय अधिकारों के लिए लड़ती है, जब वह मुक्ति समानता और भाईचारे की बात करती है। स्त्री भी वही लड़ाई लड़ने को प्रतिश्रुत हो गई है।"[19]

कवि परम्परावादी पुरुष की मानसिकता को उत्तर आधुनिक युग में बदलने की कोशिश अपनी कविता के माध्यम से करता है। इसका प्रमाण है उनकी स्त्री संबंधी कविताएँ और 'बेटियाँ' नामक काव्य संकलन। कवि का मानना है कि जहाँ कहीं भी स्त्री विरोधी स्वर उठे वहाँ बात 'बेटियों' से आरम्भ होनी चाहिए, क्योंकि औरतों को पुरुष भले ही महत्त्व न दें किन्तु वे बेटियों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। कवि बेटी को 'पिता के जीवन का उजास' मानते हैं। वे कहते हैं-

"बेटियाँ होती ही शहद है
जो मिटा देती हैं
आत्मा की सारी कड़वाहट"[20]

बेटियाँ न हो तो पिता का जीवन अँधेरे में खो जाता है। कवि चिंतित है कि भूमंडलीकरण के दौर में प्रेम के स्वरुप में परिवर्तन हो रहे हैं, किन्तु कवि आत्मा के मिलन को प्रेम मानते हैं। 'प्रेम-1990' शीर्षक कविता में प्रेम संवेदना द्रष्टव्य है-

"तब देह में उतरने से अधिक बहुत अधिक
लालसा थी
आत्मा में उतरने की।"[21]

अब तो प्रेमी अश्लील विडियो बनाता है और स्त्री प्रेम का व्यापार करने लगता है। कवि जे.एन.यू. को याद करता है जहाँ आजादी ही सबसे बड़ा मूल्य था, चाहे लड़का हो या लड़की। कवि विश्व के समस्त बेटियों में नयी उर्जा का संचार करते हुए, असुरक्षा, शंका और भय के घेरे से बाहर निकलने की बात करते हैं-

" ओ मेरी बेटियो याद रखना
यदि जीवन में दुःख का आलाप दीर्घ होने लगे
तब भी परछाइयों के पीछे-पीछे मत भागना
डरना नहीं किसी आईने से!"[22]

सिमोन द बोउवा ने 'द सेकेंड सेक्स' में कहा है कि स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है। कवि श्रीवास्तव जी मानते हैं कि अँधेरा अब टल चुका है और यह विश्वास है कि स्त्री अब सब कुछ विधाता की मर्जी मानकर नहीं सहेगी। नई पीढ़ी आशान्वित करती है कि वह एक दिन नया सवेरा लायेगी। बेटियों को संबोधित करते हुए कहते हैं-

उठो, जागो
ओ मेरी बेटियो
देखो
पौ फट चुकी है
सबेरा होने को है"[23]

कवि का यह 'नया विहान' गीत नई पीढ़ी में नई उर्जा का संचार करता है। स्त्री जागरण के साथ ही यह आवश्यक है कि पुरुषों को अपनी मानसिकता बदल लेनी चाहिए। पुरुष उसे भोग्य न समझे, स्त्री को उसका अधिकार अपने हाथों से प्रदान करे। पुरुष को अपने होने का अर्थ समझना चाहिए। सिमोन द बोउवा का कथन है- "पुरुष अपनी इन सुविधाओं का पूरा और अबाध भोग तब तक नहीं कर सकता जब तक कि अपनी श्रेष्ठता को वह अधिकार के रूप में न रखें। पुरुष होने का यह अर्थ था कि वह अपने वर्ग की सुविधा के लिए कानून बनाए, अपने वर्ग हित का ध्यान रखें और साथ ही वह ऐसी ज्यूरी बने जो इन कानूनों को सिद्धांत में परिणत कर दे।"[24] स्त्री सुख का सामान जुटाने का साधन नहीं है, वह स्वयं सुख है। जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की, अपने आपको खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है। वह आनंद भोग के लिए नहीं आती, आनंद लुटाने के लिए आती है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्त्री को उसका अधिकार देते हुए महत्त्व प्रदान किया जाना चाहिए। आधी आबादी के बिना मनुष्य का अस्तित्व नहीं है। जहाँ कहीं स्त्री तिर्यक दशाओं (दलित, वंचित, स्त्री) में है, वहाँ स्त्री को पुरुषों की आवश्यकता है जो दुःख में उसके मन को सहलाए, सांत्वना दे। स्त्री अगर सीमा का अतिक्रमण कर रही है तो पुरुष को भी अपनी सीमा का ज्ञान होना चाहिए। पराधीनता समाज को अँधेरे की ओर ले जाती है चाहे वह पुरुष की हो स्त्रियों की। तुलसीदास ने कहा भी है- 'कत बिधि सजी नारि जग माँही। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।।' वर्तमान संघर्ष को देखते हुए यह माना जा सकता है कि स्त्री अब अधिक दिनों तक पुरुष और समाज की पराधीन बनी नहीं रहेगी। यह आशा को और दृढ़ करता है कि नई पीढ़ी में जागृति की लहर दौड़ रही है।

सन्दर्भ:

1. http://sahityakunj.net/entries/view/vedon-mein-naari-ki-bhumika
2. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2012), *कायांतरण,* किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं. -11
3. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2016), *कवि ने कहा,* किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं. -94
4. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2020), *सूरज को अंगूठा,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या -113-114
5. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2012), *कायांतरण,* किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं. -76
6. वर्मा, महादेवी, (2012), *श्रृंखला की कड़ियाँ,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृ.सं. -35
7. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2012), *कायांतरण,* किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं. -43
8. गीताश्री, (2008), *स्त्री आकांक्षा के मानचित्र,* सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 65
9. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2008), *असुंदर सुंदर,* भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पृ.सं. -94
10. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2020) *सूरज को अंगूठा,* राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. -20
11. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2012), *कायांतरण,* किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं.-112
12. अग्रवाल, रोहिणी, (2011), *स्त्री लेखन:स्वप्न और संकल्प,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या -276
13. gadyakosh.org/भूमंडलीकरण के स्त्री प्रश्न/प्रभा खेतान
14. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2019), *उजास,* सेतु प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या -303
15. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2020), *सूरज को अंगूठा,* राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. -45
16. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2019), *उजास,* सेतु प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या -303
17. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2012), *कायांतरण,* किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं. -58-59
18. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2011), *बिल्कुल तुम्हारी तरह,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 62
19. गुप्ता, रमणिका, (2012), *स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास,* सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या -48
20. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2019), *बेटियाँ,* के.के. पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या -35
21. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2012), *कायांतरण,* किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं. -81
22. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2019), *बेटियाँ,* के.के. पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या -42
23. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, (2019), *बेटियाँ,* के.के. पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या -53
24. बोउवा, द सिमोन, (2004), *स्त्री उपेक्षिता,* हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, पृ.सं. -28